

संजातीय अल्पसंख्यक एवं उनकी संजातीयता के आधार (ETHNIC MINORITIES AND BASES OF THEIR ETHNICITY)

भारतीय समाज में संजातीय अल्पसंख्यक की प्रकृति एवं समस्याओं को समझने से पहले संजातीयता का अर्थ समझना आवश्यक है। साधारणतया संजातीयता के अर्थ को मानवशास्त्रीय सन्दर्भ में प्रजातीय भेद-भाव अथवा नृजातीय भिन्नताओं से समझ लिया जाता है। समाजशास्त्रीय अर्थ-में एक संजातीय समूह वह होता है जो कुछ विशेष सांस्कृतिक, धार्मिक, भाषायी, क्षेत्रीय या वेश-भूषा सम्बन्धी भिन्नताओं के आधार पर अपने आपको दूसरे समूहों या समुदायों से पृथक् समझने लगता है। पृथकता की इसी भावना को हम संजातीयता कहते हैं। भारतीय समाज की यह विशेषता है कि एक ओर हमारा समाज धर्म और भाषा के आधार पर बहुसंख्यक और अल्पसंख्यक भागों में बंटा हुआ है तो दूसरी ओर अल्पसंख्यकों को सभी तरह के समान अधिकार मिलने के बाद भी वे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में विशेष सुविधाएं पाने की मांग करते रहते हैं। एक लम्बे समय तक विभिन्न जातियां एक-दूसरे से अलग रहने के कारण अलग-अलग सांस्कृतिक वर्गों में विभाजित हो गईं। ऐसे सभी धार्मिक, भाषायी, क्षेत्रीय तथा जातिगत समूह अपनी एक अलग सांस्कृतिक पहचान बनाये रखने का प्रयत्न करते हैं। किसी आयोजन के अवसर पर, बाजार में या सफर करते हुए यात्रियों के बीच यदि किसी बात पर विवाद पैदा हो जाये तो गलती किसी की भी हो, मुसलमान एक मुसलमान का और हिन्दू द्वारा एक हिन्दू का पक्ष लिया जाने लगता है। बंगाली लोग बंगाली का पक्ष लेते हैं, मजदूरों द्वारा मजदूर का तथा निम्न जाति के लोगों द्वारा दलित जाति के व्यक्ति का ही पक्ष लिया जाने लगता है। यही संजातीयता की प्रवृत्ति है जो एक-दूसरे से भिन्न सांस्कृतिक विशेषताओं वाले समूहों के बीच दूरियां पैदा करती है।

भारत में स्वतन्त्रता से पहले तक देश के विभिन्न समुदायों के बीच अनेक सांस्कृतिक भिन्नताएं होने के बाद भी राष्ट्रीय और धार्मिक आन्दोलनों में सभी समुदायों का योगदान रहा। इस समय तक किसी भी समुदाय को संजातीय आधार पर अल्पसंख्यक अथवा बहुसंख्यक के रूप में नहीं देखा गया। स्वतन्त्रता के बाद विभिन्न संजातीय समुदायों ने अपनी अलग पहचान स्थापित करने के लिए भाषा, क्षेत्र और संस्कृति के आधार पर अपने आपको इस तरह संगठित करना आरम्भ कर दिया जिससे लोकतांत्रिक व्यवस्था में वे अपनी शक्ति को बढ़ा सकें। विभिन्न राजनीतिक दलों ने भी भाषा, क्षेत्र और संस्कृति के आधार पर संजातीयता को प्रोत्साहन देकर अपने राजनीतिक हितों को पूरा करना आरम्भ कर दिया। अनेक राजनीतिक दलों का निर्माण जातिगत आधार पर इस कारण होने लगा जिससे ऐसे राजनीतिक दल अपने लिए एक अलग वोट बैंक बना सकें। यहीं से संजातीय अल्पसंख्यक और बहुसंख्यक की धारणा विकसित होना आरम्भ हो गई।

भारत के संविधान में 'संजातीय अल्पसंख्यक' जैसे किसी शब्द का प्रयोग नहीं हुआ है। संविधान में सभी धर्मों, संस्कृतियों, भाषाओं, क्षेत्रों तथा लिंग के लोगों को समान अधिकार दिये गये हैं। इसके बाद भी व्यावहारिक रूप से जो जाति-समूह अपनी जनसंख्या के कम प्रतिशत के कारण विभिन्न समस्याओं का कारण अधिक जनसंख्या वाली जातियों को मानते हैं, वे स्वयं को संजातीय अल्पसंख्यक होने का दावा करने लगते हैं। इसी तरह भाषा और क्षेत्र के आधार पर भी संजातीय अल्पसंख्यक जैसी धारणा विकसित होने लगी। यदि हम भाषायी आधार पर विचार करें तो पाते हैं कि भारत में हिन्दी भाषी लोगों की संख्या लगभग 40 प्रतिशत है। इसके अतिरिक्त कोई भी दूसरी भाषा ऐसी नहीं है जिससे सम्बन्धित लोगों का प्रतिशत 8.25 से अधिक हो। इस आधार पर हिन्दी के अतिरिक्त दूसरे भाषाओं से सम्बन्धित समुदायों को अल्पसंख्यक मान लिया जाता है। यदि क्षेत्रीय दृष्टिकोण से देखा जाये तो उत्तर भारत में हिन्दी की प्रधानता है जबकि दक्षिण भारत में तेलुगु, तमिल, कन्नड़ और मलयालम प्रमुख भाषाएं हैं। पूर्वी भारत की मुख्य भाषाएं बंगाली,

असमी और उड़िया हैं जबकि पश्चिम भारत में गुजराती और मराठी भाषाओं की प्रधानता है। प्रतिशत के आधार पर एक विशेष भाषा से सम्बन्धित कम लोग अपने आपको अल्पसंख्यक मानकर किसी भी राष्ट्रीय भाषा का इसलिए विरोध करने लगते हैं जिससे उनकी भाषा से सम्बन्धित संस्कृति के विकास में कोई बाधा पैदा न हो। आज भाषायी आधार पर राज्यों का पुनर्गठन हो जाने के बाद भी भाषा के आधार पर बहुसंख्यक और अल्पसंख्यक के भेद में कोई कमी नहीं हो सकी।

संजातीय अल्पसंख्यक की अवधारणा का मुख्य सम्बन्ध सांस्कृतिक विभिन्नता से होने के कारण विभिन्न सामाजिक संस्थाओं, वेश-भूषा तथा खान-पान की भिन्नता भी इसके विकास के कुछ प्रमुख आधार हैं। व्यावहारिक रूप से संसार के सभी देशों के निवासियों में कुछ न कुछ सांस्कृतिक भिन्नताएँ अवश्य पायी जाती हैं। इसके बाद भी अधिकांश देशों में राष्ट्रीय पहचान को किसी विशेष समुदाय की संस्कृति से अधिक महत्वपूर्ण माना जाता है। भारतीय समाज का संकट यह है कि अधिकांश समुदाय अपनी उन सामाजिक संस्थाओं को बनाये रखने के लिए संघर्ष तक करने के लिए तैयार हो जाते हैं जो राष्ट्र के कानूनों तक के विरुद्ध होती हैं। उदाहरण के लिए भारत में बाल-विवाह और बहुपत्नी विवाह पर नियंत्रण, जनसंख्या-नियंत्रण के उपाय, विवाह-विच्छेद तथा उत्तराधिकार से सम्बन्धित नियम कानूनों के द्वारा इस कारण प्रभावपूर्ण नहीं बनाये जा सके कि संजातीय आधार पर अनेक मुस्लिम तथा जनजातीय समुदायों ने इन्हें अपनी संस्कृति के विरुद्ध मान लिया। स्पष्ट है कि भारत में संजातीय अल्पसंख्यक की अवधारणा का कोई राष्ट्रीय अथवा कानूनी आधार नहीं है लेकिन व्यावहारिक रूप से यह भारतीय समाज के सामने एक बड़ी समस्या है।

संजातीयता के विभिन्न आधार (Main Bases of Ethnicity)

भारत में संजातीय भेद-भाव की समस्या अनेक रूपों में विकसित हुयी है। इनमें से कुछ विशेष पक्षों को समझकर संजातीयता से उत्पन्न होने वाली दशाओं को समझा जा सकता है, जो निम्नलिखित हैं :

(1) बहुसंख्यक और अल्पसंख्यक का भेद—यह पहले ही स्पष्ट किया जा चुका है कि भारतीय समाज में विभिन्न धर्मों के अनुयायियों का प्रतिशत एक-दूसरे से बहुत भिन्न है। साधारण रूप से अधिक संख्या वाले धार्मिक समुदाय को बहुसंख्यक और कम संख्या वाले धार्मिक समुदाय को अल्पसंख्यक कहा जाता है। व्यावहारिक रूप से संसार के विभिन्न भागों में जिस समुदाय को धर्म, संस्कृति या प्रजाति के आधार पर कुछ विशेष अधिकारों से वंचित कर दिया जाता है, उसी को अल्पसंख्यक समुदाय कहा जाता है। भारत में स्वतन्त्रता के बाद संविधान के द्वारा सभी धर्मों को मानने वाले लोगों को समान अधिकार दिये गये। इसके बाद भी राजनीतिक कारणों से हिन्दुओं के अतिरिक्त दूसरे सभी धर्मों को मानने वाले लोगों को अल्पसंख्यक मानकर उन्हें विशेष सुविधाएँ दी जाने लगीं। विभिन्न राजनीतिक दलों ने भी अपने वोट बैंक बनाने के लिए अल्पसंख्यक और बहुसंख्यक के बीच विभेद बढ़ाने में योगदान किया। इसी दशा ने धीरे-धीरे यहाँ संजातीय अल्पसंख्यक की भावना को प्रोत्साहन देना आरम्भ कर दिया।

(2) जातिगत भिन्नताएँ—संजातीय अल्पसंख्यक का दूसरा रूप भारत में जातियों के विभाजन और विभिन्न जातियों की एक-दूसरे से भिन्न सांस्कृतिक विशेषताओं के रूप में देखने को मिलता है। भारत की 81 प्रतिशत से भी अधिक जनसंख्या वाला हिन्दू समुदाय केवल ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र जैसे चार वर्णों में ही विभाजित नहीं है बल्कि पवित्रता और अपवित्रता के आधार पर एक-एक वर्ण भी सैकड़ों जातियों में विभाजित है। एक लम्बे समय तक इन जातियों के बीच दूरी बनी रहने के कारण उनके व्यवहार प्रतिमानों, व्यवसाय, वेशभूषा और जीवन-विधि में काफी अन्तर विकसित हो गया। अपनी सांस्कृतिक भिन्नताओं के कारण प्रत्येक जाति एक पृथक् सांस्कृतिक समुदाय बन गया। इस दशा ने संजातीय असामंजस्य का रूप तब ले लिया जब सभी जातियों ने अपने अलग-अलग संगठन बनाकर दबाव समूहों (pressure groups) के रूप में काम करना आरम्भ कर दिया। भारत के संविधान द्वारा जातिगत विभेदों को पूरी तरह समाप्त कर दिया गया है लेकिन राजनीतिक स्वार्थों के कारण विभिन्न जातियों के बीच की दूरी अभी भी बनी हुई है।

(3) धार्मिक विश्वासों की भिन्नता—किसी समुदाय में लोगों के धार्मिक विश्वासों के अनुसार ही उनके व्यवहार के तरीकों का निर्धारण होता है। उदाहरण के लिए हिन्दू धर्म में आत्मा सम्बन्धी विश्वासों के कारण पुनर्जन्म के विश्वास विकसित हुए और इन्हीं के अनुसार विभिन्न प्रकार के

संस्कार और अनुष्ठान निर्धारित हुए। इस्लाम में पुनर्जन्म सम्बन्धी विश्वासों का प्रचलन नहीं है। इसके फलस्वरूप लौकिक सुखवाद को अधिक महत्व मिलने लगा। जनजातीय समाजों के धार्मिक विश्वासों में टोटम और जादू-टाने का समावेश है। धार्मिक विश्वासों के आधार पर ही एक समुदाय विभिन्न प्रकार के सम्प्रदायों और पंथों में विभाजित होने लगता है। जो व्यक्ति समान प्रकार के धार्मिक विश्वासों से सम्बन्धित होते हैं, वे अपने आपको एक अलग संजातीय समुदाय के रूप में मानकर दूसरे संजातीय समुदायों से अपने आपको गिन समझने लगते हैं। इससे कम संख्या वाले समूह अपने आपको संजातीय अल्पसंख्यक के रूप में देखने लगते हैं।

(4) सांस्कृतिक विविधताएँ—डॉ. एस. सी. दुबे ने भारतीय समाज का अध्ययन करके यहाँ के संजातीय अल्पसंख्यक की अवधारणा को सांस्कृतिक विविधताओं के आधार पर स्पष्ट किया है। आपके अनुसार क्षेत्रीय रीति-रिवाजों, स्थानीय परम्पराओं और परिचयी संस्कृति से उत्पन्न होने वाले प्रभावों के आधार पर भारत में विभिन्न समुदायों की सांस्कृतिक विशेषताएँ एक-दूसरे से बहुत भिन्न देखने को मिलती हैं। इसका अर्थ है कि एक ही उत्सव और त्यौहार को अलग-अलग क्षेत्रों में भिन्न-भिन्न रूप से मनाया जाता है। विभिन्न समुदायों में विवाह से सम्बन्धित परम्पराएँ, नातेदारी व्यवस्था और सामाजिक मूल्य एक-दूसरे से भिन्न हैं। इरावती कर्वे ने भी यह स्पष्ट किया कि वैवाहिक और नातेदारी व्यवस्था के आधार पर सम्पूर्ण समाज उत्तरी क्षेत्र, मध्य क्षेत्र, दक्षिणी क्षेत्र तथा पूर्वी क्षेत्र में विभाजित है तथा सांस्कृतिक विशेषताओं के आधार पर इन सभी क्षेत्रों के लोग अपने आपको एक-दूसरे से भिन्न संजातीय क्षेत्र के रूप में देखते हैं। जिस संजातीय क्षेत्र को दूसरे क्षेत्र की तुलना में कम आर्थिक और राजनैतिक अधिकार प्राप्त होते हैं, वह स्वयं को अल्पसंख्यक श्रेणी की तरह मानने लगता है।

(5) समाज का वर्गों में विभाजन—दुनिया के सभी समाज अनेक सामाजिक वर्गों में विभाजित हैं लेकिन भारत में वर्ग विभाजन की वर्तमान संरचना ने संजातीयता में विशेष योगदान किया है। मूल रूप से भारतीय समाज उच्च वर्ग, मध्यम वर्ग, श्रमिक वर्ग तथा किसान वर्ग में विभाजित है। उच्च वर्ग की जीवन-पद्धति और आर्थिक साधन शेष सभी वर्गों से अलग होने के कारण इस वर्ग के लोग अपने से भिन्न किसी भी दूसरे वर्ग के लोगों से सम्बन्ध रखना नहीं चाहते। मध्यम वर्ग का जीवन सबसे अधिक विविधतापूर्ण है। इसके ऊपरी भाग की विशेषताएँ उच्च वर्ग से मिलती-जुलती हैं जबकि मध्यम वर्ग का सबसे निचला हिस्सा श्रमिक वर्ग की तरह होता है। जो लोग सीमित आय के बाद भी जीवन की अनिवार्य आवश्यकताओं को सरलता से पूरा कर लेते हैं, वे मध्यम वर्ग के वास्तविक प्रतिनिधि हैं। इस वर्ग की मनोवृत्तियाँ परम्परावादी होती हैं तथा यह वर्ग सबसे अधिक जागरूक और स्वाभिमानी होता है। कारखानों और सामान्य प्रतिष्ठानों में शारीरिक श्रम करने वाले लोग श्रमिक वर्ग के अन्तर्गत आते हैं। अकुशल कारीगर भी इसी वर्ग से सम्बन्धित हैं। यह आर्थिक रूप से असुरक्षित और सामाजिक रूप से पिछड़ा हुआ वर्ग है। कृषि के द्वारा आजीविका उपार्जित करने वाले छोटे किसानों से एक अलग श्रेणी का निर्माण होता है। इन सभी वर्गों की मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और शैक्षणिक विशेषताएँ अलग-अलग होने से भी संजातीय असमानताएँ बढ़ने लगती हैं।

किसी समाज में जब विभिन्न आधारों पर बहुत-से संजातीय समुदाय बनने लगते हैं तो संजातीय आधार पर समाज बहुसंख्यक और अल्पसंख्यक समुदायों के रूप में विभाजित होने लगता है। इसका कारण यह है कि प्रत्येक संजातीय समुदाय अपनी संस्कृति, भाषा, वेशभूषा, रीति-रिवाजों, विश्वासों और जीवन-शैली को सर्वोत्तम मानने लगता है। जिस संजातीय समूह का आर्थिक साधनों पर अधिक अधिकार होता है अथवा उसे अधिक राजनैतिक अधिकार मिले होते हैं, वह अक्सर अपने से कमजोर संजातीय समूहों का शोषण करने लगता है। इससे अल्पसंख्यक संजातीय समुदायों में तनाव और संघर्ष की दशाएँ पैदा हो जाती हैं। यदि किसी संजातीय समूह के कारण दूसरे संजातीय समूह के परम्परागत अधिकारों में कमी होने लगती है तो भी इससे एक नयी समस्या को प्रोत्साहन मिलने लगता है। उदाहरण के लिए बिहार के एक बड़े हिस्से में जब वहाँ के सम्पन्न वर्ग ने आदिवासियों के साथ सौतेला व्यवहार करना आरम्भ कर दिया तो वहाँ के आदिवासियों ने भी अपने आपको एक अल्पसंख्यक संजातीय समूह मानकर उनसे पृथक् रहने के लिए झारखण्ड राज्य की माँग करना

आरम्भ कर दी। धीरे-धीरे इस माँग ने इतना जोर पकड़ लिया कि 15 नवम्बर, सन् 2000 को सरकार को झारखण्ड के रूप में एक अलग राज्य की स्थापना करना पड़ी।

यह सच है कि सांस्कृतिक विभिन्नताओं के आधार पर सभी देशों में एक-दूसरे से भिन्न समुदाय पाये जाते हैं। इसके बाद भी ऐसे सभी समुदाय एक राष्ट्र के अभिन्न अंग होते हैं तथा संजातीयता की प्रवृत्ति राष्ट्रीय धारा के अधीन होती है। भारत में संजातीय बहुसंख्यक और अल्पसंख्यक की समस्या का समाधान तभी हो सकता है जब संजातीयता की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन देने वाली दशाओं के प्रभाव को कम करके राष्ट्रीय हितों को सर्वोपरि स्थान दिया जाय।